INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY

RASHTRAPATI NIVAS, SHIMLA- 171 000

University Grants Commission

Inter-University Centre for Humanities and Social Sciences

RESEARCH PAPER FOR ASSOCIATES

On

"जयपाल सिंह मुंडा और जनजातीय स्वायत्तता के लिए संघर्ष: भारतीय संविधान में पांचवीं अनुसूची प्रावधानों का विश्लेषण"

Submitted by

Dr. Brajesh Kumar Prasad

Assistant Professor, Department of History, Faculty of Social Sciences,

BHU, Varanasi, UP, India

Abstract:

जयपाल सिंह मुंडा भारतीय आदिवासी समाज के एक अप्रतिम नेता और संविधान सभा के प्रमुख सदस्य थे। उन्होंने भारतीय आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक अस्मिता को संरक्षित करने और उनकी स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए आजीवन संघर्ष किया। यह शोध पत्र जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व में भारतीय संविधान में पंचम अनुसूची के समावेश और उसके प्रभाव का विश्लेषण करता है। पंचम अनुसूची भारतीय संविधान का वह भाग है, जो अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातियों के अधिकारों और प्रशासन के लिए विशेष प्रावधान करता है। यह अनुसूची इन क्षेत्रों में भूमि, जल और जंगल जैसे संसाधनों पर आदिवासियों के पारंपरिक अधिकारों की रक्षा करती है और बाहरी हस्तक्षेप से बचाने के उपाय करती है। जयपाल सिंह मुंडा ने संविधान सभा में आदिवासियों के अधिकारों और उनके विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे को संरक्षित करने की पुरजोर वकालत की। इस शोध पत्र में उनके जीवन, राजनीतिक दृष्टिकोण, और संविधान सभा में उनकी भूमिका का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से, आदिवासी क्षेत्रों में प्रशासनिक स्वायत्तता, आदिवासियों की सांस्कृतिक पहचान और उनके संसाधनों की सुरक्षा जैसे मुद्दों पर उनके विचारों का विश्लेषण किया गया है। शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जयपाल सिंह मुंडा का योगदान भारतीय लोकतंत्र में

आदिवासी समाज के लिए एक मील का पत्थर है। पंचम अनुसूची का समावेश न केवल आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि उनके सामाजिक-आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है। जयपाल सिंह मुंडा का संघर्ष और दृष्टिकोण आज भी आदिवासी आंदोलनों के लिए प्रेरणा स्रोत है।

Keywords: जयपाल सिंह मुंडा, आदिवासी स्वायत्तता, पंचम अनुसूची, संविधान सभा, आदिवासी अधिकार
जयपाल सिंह मुंडा आदिवासियों के बीच चेतना जगाने वाले कुछ प्रमुख ऐतिहासिक चरित्रों में से एक हैं। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान, संविधान सभा के सदस्य के रूप में और बाद के दौर में झारखंड पार्टी के अध्यक्ष और सांसद के रूप में लगातार आदिवासी प्रश्न की विशिष्टता पर बल दिया। उन्होंने आदिवासियों की चिंताओं को अखिल भारतीय राष्ट्रवाद की रूपरेखा में पूरी तरह समाहित कर देने का पुरज़ोर विरोध किया क्योंकि वे यह मानते थे कि ऐसी स्थिति में आदिवासी प्रश्न को बड़ी आसानी से हाशिए पर ढकेल दिया जाता है। जयपाल सिंह की राजनीति आदिवासी अस्मिता से प्रेरित थी, और उन्होंने आदिवासियों के लिए अलग प्रांत बनाने का न सिर्फ़ ज़ोरदार समर्थन किया, बल्कि इसे अपनी राजनीति का बुनियादी आधार भी बनाया। इस शोध-आलेख का लक्ष्य यह विचार करना है कि राष्ट्रवाद की व्यापक रूपरेखा में हाशिए के एक समूह अर्थात् आदिवासियों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए जयपाल सिंह ने परंपरा और आधुनिकता, तथा राष्ट्रवाद और क्षेत्रीय स्वायत्तता के जटिल संबंधों को किस प्रकार समझा, और उनके लिए इनके बीच के अंतर्विरोधों से आगे जाने का रास्ता क्या था? यहाँ जयपाल सिंह मुंडा के जीवन, और उनकी राजनीतिक गतिविधियों के विशद वर्णन के साथ ही उनके विचारों के कुछ प्रमुख तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है।

औपनिवेशिक काल में आदिवासी राजनीतिक आंदोलनों के broadly तीन प्रमुख आयाम हैं। सबसे पहले, अधिकांश अध्ययन आध्यात्मिक और क्रांतिकारी आंदोलनों पर केंद्रित रहे हैं। दूसरा, कांग्रेस और साम्यवादियों द्वारा संचालित आंदोलनों पर। हालाँकि, आदिवासी आंदोलनों की एक तीसरी धारा भी थी, जो आधुनिक संगठित राजनीति पर आधारित थी और जिसने आदिवासी पहचान को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। यह धारा ऐतिहासिक अध्ययन के आलोचनात्मक दृष्टिकोण से अक्सर अनदेखी की गई है। साम्यवादी नेतृत्व वाले आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोहों की तुलना में इस आंदोलन की विशिष्टता को रेखांकित करना आवश्यक है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, जो बी. टी. रणदिवे के सिद्धांतों के प्रभाव में थी, आदिवासी प्रश्न को 'किसान' अशांति के रूप में देखती थी, जिसे संगठन, सक्रियता, और हिंसक प्रतिरोध के माध्यम से हल किया जा सकता था। उन्होंने भारतीय राज्य को उखाड़ फेंकने की आवश्यकता पर जोर दिया, लेकिन कभी भी आदिवासी पहचान के लिए एक सजीव सांस्कृतिक भाषा प्रदान नहीं की। इस सीमित दृष्टिकोण ने उनकी राजनीति के व्यापक प्रसार में बाधा उत्पन्न की।

आदिवासी प्रश्न के प्रति वामपंथी दृष्टिकोण की एक और कमजोरी उनकी 'वर्ग' आधारित विश्लेषण पर अत्यधिक निर्भरता थी। इसलिए, जहाँ एक ओर साम्यवादियों ने मुख्यतः आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों की प्रासंगिक मांगों को उठाया, वहीं उन्होंने केवल आर्थिक विचारों पर आधारित राजनीति की सीमाओं को भी उजागर किया, जिसमें स्वायत्तता या आत्मनिर्णय के लिए कोई भावनात्मक अपील नहीं थी।

इस संदर्भ में, आदिवासी महासभा के नेतृत्व में आदिवासी पहचान और उसकी भावनात्मक परतों का विकास लोकतांत्रिक राजनीति के एक नए युग की शुरुआत का संकेत था। करिश्माई नेता जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व में, महासभा ने पूर्वी और मध्य भारत की क्षेत्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आंदोलन के उदय की पृष्ठभूमि में, जिसमें जयपाल सिंह मुंडा को "मरांग गोमके" (सर्वोच्च नेता) के रूप में मान्यता मिली ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में बिरसा उलगुलान और उसके प्रभाव

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में बिरसा उलगुलान एक मिलेनारियन आंदोलन था, (**मिलेनारियन आंदोलन** उन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों को कहा जाता है, जिनका उद्देश्य किसी आदर्श समाज की स्थापना या एक दिव्य हस्तक्षेप के माध्यम से मौजूदा अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंत करना होता है। बिरसा उलगुलान इसी श्रेणी में आता है। जिसे एक धार्मिक और मसीही नेतृत्वकर्ता बिरसा मुंडा ने चलाया। हालांकि, ब्रिटिश शासन ने इस विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया, जिसके परिणामस्वरूप बिरसा मुंडा की मृत्यु हो गई। इसके बाद के विश्लेषण ने छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम, 1908 जैसे सुरक्षात्मक भूमि कानूनों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। यह कानून आज भी इस क्षेत्र में जनजातीय जागरूकता अभियानों का आधार बना हुआ है।

एक अन्य महत्वपूर्ण विकास यह हुआ कि आदिवासी हितों और मांगों को व्यक्त करने वाले संगठनों का उदय हुआ। ब्रिटिश और राष्ट्रवादी दोनों का मानना था कि शिक्षित वर्ग के अभाव में आदिवासी समुदाय आम तौर पर चुप रहता था और उनकी ओर से अन्य लोगों को बोलना पड़ता था। हालांकि, आदिवासी आवाज़ों के सबूत पूरी तरह से अनुपस्थित नहीं थे, क्योंकि उनमें से एक नया मध्यम वर्ग उभर रहा था जो राजनीतिक रूप से जागरूक था और अपने हितों को नए और प्रभावशाली तरीकों से व्यक्त कर रहा था।

इसका प्रमाण 1939 में बिहार विधान परिषद में हुए एक बहस में देखा जा सकता है, जिसमें आदिवासी समुदाय के दो प्रतिनिधि—इग्नेस बेक और बोनिफेस लकड़ा—ने भाग लिया। ये दोनों 'कोलिशन अबोरिजिनीज़' के सदस्य और विधायक थे।[1] यह बहस बिहार के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीकृष्ण सिन्हा द्वारा शुरू की गई थी, जिसमें भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत बहिष्कृत और आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्रों के प्रावधानों को पूरी तरह समाप्त करने की मांग की गई थी। यह कांग्रेस की व्यापक नीति के अनुरूप था, जो आदिवासी और गैर-आदिवासी क्षेत्रों के बीच कोई प्रशासनिक भेदभाव नहीं चाहती थी।

इस लंबी बहस के दौरान, लकड़ा और बेक ने "वर्तमान बिहार सरकार में अविश्वास " व्यक्त की। इन भाषणों का समय भी महत्वपूर्ण था क्योंकि हाल ही में रांची और सिंहभूम में जिला बोर्ड चुनावों में आदिवासी महासभा को बड़ी जीत मिली थी। बेक और लकड़ा ने "छोटानागपुर के लिए आत्मनिर्णय" की मांग की। लकड़ा ने कांग्रेस सरकार की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि कांग्रेस ने अल्पसंख्यकों को विशेष सुरक्षा देने के विचार का केवल दिखावा किया, लेकिन वास्तव में उसका रवैया आदिवासियों के प्रति "ठंडा, असहानुभूतिपूर्ण और असंवेदनशील" रहा। जब भी आदिवासी और गैर-आदिवासी हितों के बीच संघर्ष हुआ, मंत्रालय हमेशा

बहुसंख्यकों के पक्ष में झुक गया। अपने भाषण के अंत में, उन्होंने कांग्रेस सरकार को चेतावनी दी कि यदि उनका रवैया आदिवासियों के प्रति प्रतिकूल और "हमारे हितों के प्रति शत्रुतापूर्ण" बना रहा, तो बिहार के आदिवासी एक अलग प्रांत की मांग करेंगे।

लकड़ा द्वारा उपयोग किया गया बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक का संदर्भ महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह बिहार की आबादी में आदिवासियों को एक विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में पहचानने की ओर संकेत करता है, जिन्हें शोषण से मुक्ति और सुरक्षा के लिए एक अलग स्वायत्त क्षेत्र की आवश्यकता थी। प्रतीकात्मक स्तर पर, अलग राज्य की मांग आदिवासी पहचान और उनकी भूमि/क्षेत्र के साथ सहजीवी संबंध को पुनः स्थापित करती है। समय के साथ, ऐसी मजबूत भावनात्मक अपीलें आदिवासी महासभा के राजनीतिक जागरूकता अभियानों की पहचान बन गईं।

बेक ने कहा कि वर्तमान आदिवासी 'प्राचीन आदिवासियों, सिंधु घाटी सभ्यता के वंशज हैं और यह भी दावा किया कि कई पिछड़ी जातियां भी इन्हीं आदिवासियों की संतान हैं। बेक ने यह भी कहा कि राष्ट्रीय ताकतों के साथ तालमेल बैठाने के आदिवासियों के प्रयासों के बावजूद, गांधी और कांग्रेस का उच्च नेतृत्व उनके प्रति असंवेदनशील बना रहा। वहीं दूसरी ओर, कांग्रेस ने हरिजनों के मामले को एक अखिल-भारतीय समस्या के रूप में स्वीकार किया । बेक ने आदिवासियों के लिए इस घटना से यह शिक्षा ली कि वे किसी पर भरोसा नहीं कर सकते और उन्हें 'अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए'।

हालाँकि बेक ने माना कि आदिवासियों के लिए अलगाव हानिकारक था, लेकिन उन्होंने संरक्षण की आवश्यकता को इस प्रकार दोहराया:

"हम महसूस करते हैं कि हमें हमारे गरीबी, कम संख्या और विशेष रूप से इस कारण से शोषित और उपेक्षित किया गया है क्योंकि हमारे पास कोई राजनीतिक संगठन नहीं है... इन सभी को देखते हुए, हमने खुशी-खुशी अपना खुद का आंदोलन, आदिवासी आंदोलन, शुरू किया है। मैं अपने बिहारी मित्रों से अनुरोध करूंगा कि इस आंदोलन को राष्ट्र-विरोधी या कांग्रेस-विरोधी के रूप में न समझें। यह कोई साजिश नहीं है; यह कोई मिशनरी रणनीति नहीं है। यह आत्मनिर्णय के लिए एक ईमानदार कदम है। यदि हमने उदारता से कांग्रेस में शामिल होने से खुद को रोका है, तो यह द्वेष से नहीं है। यह आप पर है कि आप हमारा विश्वास जीतें। आपको यह समझना चाहिए कि आदिवासी समुदाय तेज़ी से प्रगति कर रहा है और वह अपने जीवन को पूरी ताकत और सम्मान के साथ जीने का हकदार है। आत्मनिर्णय का यह प्रश्न, प्रांत के अलगाव का यह प्रश्न, इसे इतना भ्रमित या व्याख्यायित न करें कि यह कहा जाए कि यह राष्ट्र-विरोधी है।"

1939 में बिहार की बहसों में शामिल ये दोनों आदिवासी प्रतिनिधि ईसाई धर्मान्तरित थे, लेकिन जिस तरीके से उन्होंने अपनी निराशा, आकांक्षाओं और अपने इतिहास पर गर्व को व्यक्त किया, वह यह दर्शाता है कि राजनीतिक परिदृश्य बदलने लगा था। कम से कम छोटानागपुर में, आदिवासी पहचान और अस्मिता की राजनीति ने आदिवासी शिक्षित वर्ग की चेतना को प्रभावित करना शुरू कर दिया था।

इसने छोटानागपुर के आदिवासियों के भीतर आधुनिक संगठित राजनीति के एक नए युग की शुरुआत की, जिन्होंने खुद को आदिवासी के रूप में पहचानना शुरू कर दिया था, और इसने जयपाल सिंह मुंडा के मरांग गोमके (सर्वोच्च नेता) के रूप में उभरने का मार्ग प्रशस्त किया।

छोटानागपुर और संथाल परगना को बिहार से अलग करने का विचार और उसका विकास

छोटानागपुर और संथाल परगना को बिहार से अलग करने का विचार पहली बार मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों पर चर्चा के दौरान सामने आया। एक दशक बाद, यह मुद्दा तब फिर से उठाया गया जब भारतीय सांविधिक आयोग (Indian Statutory Commission) ने भारत के भविष्य के संवैधानिक ढांचे पर विचार किया। प्रमुख आदिवासी नेताओं के एक प्रतिनिधिमंडल ने आयोग के समक्ष एक विस्तृत ज्ञापन प्रस्तुत किया और साक्ष्य दिए। उन्होंने आदिवासी स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए एक अलग प्रांत या उप-प्रांत के निर्माण की जोरदार वकालत की।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीति के लिए उल्लेखनीय परिणामों के साथ एक नया संवैधानिक मसौदा प्रस्तुत किया। इस नए संवैधानिक ढांचे के तीन प्रमुख परिणाम बिहार के लिए थे:

1. **प्रांतीय स्वायत्तता में परिवर्तन:** अधिनियम के पारित होने के साथ, द्वैध शासन (dyarchy) से प्रांतीय स्वायत्तता में परिवर्तन हुआ। निर्वाचित प्रांतीय सरकार को स्थानीय प्रशासन चलाने में काफी शक्तियाँ प्रदान की गईं। कुछ अपवादों को छोड़कर, जहाँ राज्यपाल उनकी सलाह को अस्वीकार कर सकता था (जैसे कि बहिष्कृत और आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्र), मंत्री प्रमुख कार्यकारी निर्णयकर्ता थे।
2. **उड़ीसा का नया प्रांत:** लंबे समय तक चले अभियान के बाद, उड़ीसा भाषी लोगों की मांग पर, मद्रास प्रेसीडेंसी के उड़ीसा भाषी क्षेत्रों को बिहार और उड़ीसा के पूर्ववर्ती प्रांत के साथ मिलाकर उड़ीसा का एक नया प्रांत बनाया गया।
3. **छोटानागपुर और संथाल परगना का आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्र घोषित होना:** सबसे महत्वपूर्ण, छोटानागपुर और संथाल परगना के पूरे प्रशासनिक प्रभाग को अधिनियम की धारा 92 के तहत 'आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्र' घोषित किया गया।[3]

इस क्षण से, विभिन्न राजनीतिक ताकतों ने बिहार से इन क्षेत्रों को अलग करने की मांग को मजबूत करना शुरू किया। इन बड़े बदलावों के संयोग ने आदिवासियों के भविष्य की कल्पना करने के नए रास्ते खोले। अब एक स्वायत्त मातृभूमि की मांग करने के लिए एक विशिष्ट राजनीतिक दृश्टिकोण उभर कर सामने आया था।

बिहार प्रांतीय कांग्रेस और आदिवासियों की अलग प्रांत की मांग

बिहार प्रांतीय कांग्रेस पर उत्तरी बिहार के लोगों का वर्चस्व था, और उसने आदिवासियों की स्वायत्त राज्य की मांग का जोरदार विरोध किया। कांग्रेस के ढांचे के भीतर छोटानागपुर क्षेत्र का प्रतिनिधित्व बहुत कम था।"छोटानागपुर में, एक सदी से भी अधिक समय तक विभिन्न आदिवासी आंदोलनों ने उपनिवेशी शासकों और उनके साथ मिलीभगत कर स्थानीय समूहों का शोषण करने वाले प्रसिद्ध दिकुओं (बाहरी लोगों) के खिलाफ एक विशेष चेतना विकसित की।"1930 के दशक में, छोटानागपुर में आदिवासी राजनीति ने बिहारी लोगों को *दिकू* के रूप में देखना शुरू किया, जिनकी शोषणकारी प्रवृत्तियों का विरोध करना आवश्यक था।

"दूसरी ओर, बिहारी कांग्रेसियों के लिए भारत सरकार अधिनियम, 1935 एक महत्वपूर्ण मोड़ था।उड़ीसा के निर्माण के बाद, संसाधन-समृद्ध छोटानागपुर के अलग होने से बिहार के और अधिक विभाजन की संभावना को पूरी तरह से टालना जरूरी था। इसके लिए सबसे पहले चुनावी माध्यमों से राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना आवश्यक था।

यहाँ कांग्रेस मजबूत स्थिति में थी क्योंकि सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–1932) के जनजागरण अभियानों ने इसकी राजनीतिक अपील को काफी हद तक बढ़ा दिया था। परिणामस्वरूप, जनवरी 1937 में प्रांतीय विधानसभाओं और परिषदों के चुनावों में कांग्रेस (दलित वर्ग लीग के साथ गठबंधन में) ने बिहार में शानदार जीत हासिल की। इसका प्रदर्शन केवल मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रों में कमजोर रहा, जहाँ पार्टी ने 39 सीटों में से केवल तीन जीतीं।

सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि कांग्रेस ने पिछड़ी जनजातियों के लिए आरक्षित छह सीटों में से पाँच पर जीत हासिल की। यह परिणाम नवोदित आदिवासी आंदोलन के लिए एक बड़ा झटका था। छोटानागपुर उन्नति समाज और छोटानागपुर किसान सभा (सीकेएस) द्वारा खड़े किए गए कोई भी उम्मीदवार अपने कांग्रेस प्रतिद्वंद्वियों के खिलाफ जीत हासिल नहीं कर सके।

इन समूहों का एकजुट न हो पाना, सीमित आदिवासी वोटों के विभिन्न उम्मीदवारों में विभाजित होने का कारण बना। इस समग्र प्रवृत्ति का एकमात्र अपवाद बोनिफेस लकड़ा थे, जो छोटानागपुर कैथोलिक सभा के उम्मीदवार थे। उन्होंने पिछड़ी जनजातियों और क्षेत्रों के लिए गुमला-सिमडेगा आरक्षित सीट से जीत हासिल की। कैथोलिक सभा के एक अन्य उम्मीदवार, इग्नेस बेक ने भारतीय ईसाइयों के लिए आरक्षित एक सीट जीती।

लकड़ा और बेक मिलकर बिहार विधान सभा में स्थान पाने वाले दो गैर-कांग्रेसी आदिवासी विधायक थे।

आदिवासी नेताओं की चुनावी हार और आदिवासी सभा का गठन

आदिवासी नेताओं की चुनावी हार कांग्रेस संगठन की ताकत का परिणाम नहीं थी। बल्कि, यह आदिवासी राजनीतिक समूहों के आपसी संघर्ष और आंतरिक विरोधाभासों को सुलझाने में उनकी असमर्थता का प्रतिबिंब थी। इन विभाजनों का लाभ कांग्रेस को मिला और उसने अपनी चुनावी सफलता सुनिश्चित की।

आदिवासियों के लिए यह अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण क्षण था—एक ऐसा समय जब उन्हें रणनीतिक रूप से सोचने और संगठित होने की आवश्यकता थी। नई पीढ़ी के शिक्षित आदिवासी नेताओं के बीच यह चर्चा शुरू हुई, जो जल्द ही एक संगठित ताकत में बदल गई।

इस सहमति निर्माण में प्रमुख भूमिका **छोटानागपुर कैथोलिक सभा** ने निभाई, जिसका कार्यालय रांची में विभाजित राजनीतिक ताकतों को एकजुट करने के प्रयास के लिए केन्द्र बन गया। अंततः मई 1938 में, आदिवासी नेताओं का एक प्रतिनिधि सम्मेलन रांची में आयोजित हुआ, जिसका उद्देश्य एक नए संगठन के उद्देश्यों और लक्ष्यों पर चर्चा करना था। इसे सर्वसम्मति से **आदिवासी सभा (Adivasi Assembly)** नाम दिया गया और एक अस्थायी कार्यकारी कोर समिति बनाई गई। **थियोडोर सुरिन** को अध्यक्ष और **पॉल दयाल** को महासचिव नियुक्त किया गया।

इस समाचार ने कांग्रेस खेमे में चिंता उत्पन्न कर दी, और यह वास्तव में एक दोहरी चुनौती थी। पहला, आदिवासी सभा में कांग्रेस-विरोधी मजबूत विपक्ष बनने की अंतर्निहित क्षमता थी, विशेष रूप से छोटानागपुर क्षेत्र में। दूसरा, आदिवासी सभा की धार्मिक संरचना ने जातिगत हिंदू कांग्रेस राष्ट्रवादियों के बीच चिंता पैदा की, क्योंकि अधिकांश आदिवासी नेता ईसाई धर्मांतरित थे। इसी कारण मुस्लिम लीग ने भी कांग्रेस के खिलाफ संभावित गठबंधन के लिए उनसे संपर्क किया।

ये घटनाक्रम गांधीजी के लिए चिंता का विषय बन गए। उन्हें डर था कि ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में—जिनका 'आखिरी उद्देश्य आदिवासियों का धर्मांतरण' था—आदिवासी 'भारतीयता से अलग' हो सकते हैं और अलगाववादी भावनाएँ विकसित कर सकते हैं। उन्होंने कांग्रेस से यह चुनौती स्वीकार करने और आदिवासियों के बीच काम करने का आह्वान किया। गांधीजी ने लिखा: "वे कांग्रेसियों के लिए सेवा का एक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हैं।"

अपनी पिछली उपेक्षा को सुधारने के लिए, गांधीजी ने **'आदिवासियों की सेवा'** को रचनात्मक कार्यक्रम के घोषणापत्र में शामिल किया, जो पहले अनुपस्थित था। उन्होंने अपनी मृत्यु तक 'आदिवासी' शब्द का लगातार उपयोग करना शुरू कर दिया।

यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि गांधीजी आदिवासी क्षेत्रों को अनुसूचित करने के विचार के खिलाफ थे। हार्डिमैन लिखते हैं कि 1940 के दशक की शुरुआत तक:

"उन्हें डर था कि आदिवासी मुस्लिम लीग का उदाहरण ले सकते हैं और अलग राज्यों की मांग के लिए अभियान शुरू कर सकते हैं। बंगाल के मिदनापुर जिले में कांग्रेस कार्यकर्ताओं को संबोधित करते हुए—जो एक बड़ा आदिवासी क्षेत्र था—उन्होंने कहा:

'1935 के अधिनियम ने उन्हें [आदिवासियों को] भारत के बाकी निवासियों से अलग कर दिया और "बहिष्कृत क्षेत्रों" को सीधे राज्यपाल के प्रशासन के अधीन कर दिया। यह शर्म की बात थी कि उन्होंने उन्हें इस तरह से व्यवहार करने दिया। अब यह उनका कर्तव्य था कि वे आदिवासियों को उनके साथ एक होने का अनुभव कराएँ।'"

घटनाक्रम और आदिवासी आंदोलन में जयपाल सिंह मुंडा की भूमिका

घटनाओं के विकास के साथ, आदिवासी राज्यों की अलग मांग को लेकर गांधीजी की आशंका आंशिक रूप से सही साबित हो रही थी। जल्द ही, आदिवासी सभा ने अपने आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए एक सक्षम नेता की तलाश शुरू कर दी। इस प्रक्रिया में ब्रिटिश सरकार ने भी मदद की। बिहार के गवर्नर सर मॉरिस जी. हैलेट ने अपने व्यक्तिगत मित्र जयपाल सिंह को राजनीति को अपने जीवन का उद्देश्य बनाने और नवोदित संगठन का नेतृत्व प्रदान करने के लिए प्रेरित किया। इस घटना का विवरण जयपाल सिंह की आत्मकथा में विस्तार से मिलता है।

जयपाल सिंह ने हैलेट से मुलाकात का वर्णन करते हुए लिखा:

"कांग्रेसियों के साथ समय बर्बाद मत करो। रांची जाओ। वहाँ अभी-अभी एक आदिवासी आंदोलन शुरू हुआ है। तुमने दुनिया के कई अच्छे काम किए हैं। कैनन (कॉसग्रेव) की याद में अपने लोगों के लिए कुछ करो।"

जयपाल सिंह सिर्फ़ एक राजनेता नहीं थे, बल्कि एक सुप्रसिद्ध हॉकी खिलाड़ी भी थे जिनके नेतृत्व में भारत ने 1928 का ओलंपिक जीता था। इन्होंने कुछ देशी रियासतों में एक प्रशासक और शिक्षक के रूप में भी काम किया। इसलिए ये एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं, जो आदिवासी अस्मिता पर ज़ोर देने के साथ ही साथ आधुनिक शिक्षा और विकास के अन्य आयामों के महत्त्व को समझते थे। इनके पूर्व बिरसा मुंडा ने उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दशकों में ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ विद्रोह का नेतृत्व करके आदिवासियों की आज़ादी की भावना को अभिव्यक्त किया था।' बिरसा मुंडा से पहले भी सैकड़ों आदिवासी विद्रोहों ने अंग्रेज़ों द्वारा प्राकृतिक वन संसाधनों पर क़ब्ज़ा जमाने का डटकर विरोध किया था। जयपाल सिंह ने अपनी राजनीति के माध्यम से आदिवासियों की स्वायत्त प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकारों के संदर्भ में इन्हीं मूल्यों को सहेजने और बढ़ाने की कोशिश की। जयपाल सिंह का जन्म तत्कालीन राँची ज़िले के खूँटी थाना अंतर्गत टकरा पाहन टोली नामक गाँव में हुआ था (वर्तमान समय में खूँटी खुद एक अलग ज़िला है)। इनकी वास्तविक जन्मतिथि ज्ञात नहीं है किन्तु बाद में 3 जनवरी, 1903 को इनका जन्मदिन मान लिया गया। इनके पिता अमरू पाहन आदिवासी पुरोहित थे, और कई बार ये अपने नाम के साथ मुंडा भी लगाते थे। हालाँकि जयपाल का आरंभिक नाम प्रमोद पाहन था, लेकिन बाद में यह बदलकर जयपाल सिंह कर दिया गया। जयपाल सिंह की पाँच बहनें और (इनके अलावा) दो भाई थे। इनकी आरंभिक शिक्षा टकरा के प्राथमिक स्कूल में हुई। 1910 में जयपाल के पिता ने इनका दाखिला राँची के संत पॉल स्कूल में करवा दिया। 1910 से 1918 तक उन्होंने इस स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। संत पॉल स्कूल में जयपाल सिंह की पहचान एक मेहनती और होनहार छात्र की थी और इस स्कूल के प्रिंसिपल फ़ादर कैनन कॉसग्रेव उन्हें काफ़ी पसंद करते थे। 1918 में स्कूल के प्रिंसिपल के पद से अवकाश लेकर वापस अपने देश इंग्लैण्ड जाने लगे, तो उन्होंने जयपाल सिंह को भी अपने साथ ले जाने का फैसला किया। उन्होंने जयपाल को ईसाई धर्म में दीक्षित किया। चूँकि कैनन उन्हें पादरी बनाना चाहते थे, इसलिए 1920 में उन्हें इस संदर्भ में प्रशिक्षण हासिल करने के लिए ऑगस्टीन कॉलेज केंटबरी भेजा गया। हालाँकि ख़ुद जयपाल की रुचि इस काम में नहीं थी, अतः दो वर्ष बाद उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सेंट जॉन कॉलेज में दाखिला दिलाया गया और उन्हें यहाँ 40 पाउंड की स्कॉलरशिप भी मिली और उन्होंने यहीं से 2026 में अर्थशास्त्र में ऑनर्स के साथ स्नातक किया। जयपाल सिंह की खेल-कूद में काफ़ी रुचि थी और उन्होंने हॉकी में काफ़ी महारत हासिल कर ली थी। हॉकी खिलाड़ी के रूप में वे न सिर्फ़ भारतीय टीम में चुने गये, बल्कि 1928 के ऐमस्टरडम ओलंपिक में उन्होंने भारतीय टीम की कप्तानी भी की। ओलंपिक में हॉकी को 1908 में शामिल किया गया था और भारतीय टीम ने सबसे पहले 1928 के ओलंपिक खेलों में ही भागीदारी की थी। इस ओलंपिक में भारतीय हॉकी टीम ने स्वर्ण पदक जीता था। 1932 लॉस एंजिल्स (अमेरिका) ओलंपिक में भी उन्हें फिर से भारतीय हॉकी टीम का कप्तान बनाए जाने की चर्चा थी, लेकिन कंपनी कार्यों से छुट्टी न मिल पाने कारण वे हॉकी टीम में शामिल नहीं हो सके।' जयपाल सिंह की महत्त्वाकांक्षा आईसीएस (इंडियन सिविल सर्विसेज या भारतीय प्रशासनिक सेवा) में जाने की भी थी। वे 1928 के ओलंपिक के पहले इसके लिए चयनित भी हो चुके थे। लेकिन ओलंपिक से वापस ऑक्सफ़र्ड आने के बाद उनके प्रोबेशन की अवधि यह कहते हुए एक वर्ष बढ़ा दी गई कि वे छुट्टी लिए बगैर ओलंपिक में भाग लेने चले गये थे। इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर जयपाल सिंह ने आईसीएस से इस्तीफ़ा दे दिया। इसके बाद 1928 के अंत में उन्हें 'रॉयल डच

शेल ग्रुप' नामक एक विदेश व्यापारिक कंपनी में मर्केंटाइल असिस्टेंट के पद पर नियुक्त किया गया, जो काफ़ी प्रतिष्ठा का पद था। 1934 से 1937 तक इन्होंने पश्चिमी अफ़्रीक़ी देश गोल्ड कोस्ट (वर्तमान घाना) के अचीमोटा कॉलेज में वाणिज्य शिक्षक के पद पर काम किया। जयपाल सिंह की ये दोनों ही नियुक्तियाँ अपने आप में उपलब्धि थीं क्योंकि उनके पहले रॉयल डच शेल ग्रुप ने इतने बड़े पद पर किसी भारतीय को नियुक्त नहीं किया था, और उनसे पहले गोल्ड कोस्ट के अचीमोटा कॉलेज में वाणिज्य के शिक्षक के रूप में अमूमन सिर्फ़ अंग्रेज़ शिक्षकों की ही नियुक्ति होती रही थी। अठारह वर्षों तक विदेश में रहने के बाद 1937 में जयपाल सिंह भारत आए, और उन्हें रायपुर (वर्तमान छत्तीसगढ़ की राजधानी) के राजकुमार कॉलेज में वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। इसके कुछ समय बाद वे बीकानेर रियासत (राजस्थान) में राजस्व आयुक्त तथा कार्यवाहक कोलोनाइज़ेशन मिनिस्टर के पद पर नियुक्त हुए।' ग़ौरतलब है कि जयपाल सिंह ने दो बार शादी की। पहली शादी कॉन्ग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष व्योमेश चंद्र बनर्जी की नतिनी तारा मजूमदार के साथ 1931 में दार्जिलिंग में हुई थी। पहली पत्नी से जयपाल सिंह को तीन संतानें हुई। लेकिन कई मसलों पर अनबन होने के कारण दोनों के बीच तलाक हो गया। जयपाल सिंह ने 1954 में दूसरी शादी जहाँआरा से की। जहाँआरा से भी जयपाल सिंह को तीन संतानें हुई।

1937 में कांग्रेस से जुड़ने का प्रयास और आदिवासी महासभा का नेतृत्व

1937 में, जयपाल सिंह ने कांग्रेस में शामिल होने का प्रयास किया, लेकिन उन्हें राजेंद्र प्रसाद द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इसके बाद, 1938 के अंत में, हैलेट के सुझाव पर, वे रांची गए और आदिवासी सभा के वरिष्ठ नेताओं के एक प्रतिनिधिमंडल से मिले, जिसमें राय साहब बंदीराम उरांव, पॉल दयाल, इग्नेस बेक, थेबले उरांव, थिओडोर बेक और जूलियस तिग्गा जैसे लोग शामिल थे। इस प्रतिनिधिमंडल ने उनसे आदिवासी सभा के अध्यक्ष का पद संभालने का अनुरोध किया। अपनी पत्नी और परिवार से चर्चा के बाद, जयपाल सिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

20 जनवरी 1939 को, आदिवासी सभा के दूसरे अधिवेशन के दौरान, जयपाल सिंह मुंडा को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में, उन्होंने सभा को पूर्ववर्ती आदिवासी राजनीतिक संगठनों का 'संयुक्त मोर्चा' बताया और उनके सुझाव पर इसका नाम बदलकर **आदिवासी महासभा**(Adivasi Grand Assembly) रखा गया।

जयपाल सिंह ने चार भाषाओं (अंग्रेजी, हिंदी, सदानी और मुंडारी) में एक जोशीला भाषण दिया, जिसे जबरदस्त सराहना मिली। उन्होंने घोषणा की:

"आदिवासी आंदोलन मुख्य रूप से छोटानागपुर और संथाल परगना के नैतिक और भौतिक उन्नति, आदिवासी क्षेत्रों की आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता, और कुल मिलाकर छोटानागपुर और संथाल परगना को मिलाकर एक अलग गवर्नर के प्रांत के निर्माण के लिए है। एक ऐसा सरकार और प्रशासन होना चाहिए जो इन क्षेत्रों की भावना के अनुरूप हो... (हम) बिहार से जुड़े होने के कारण पीड़ित हुए हैं। केवल अलगाव में ही छोटानागपुर का उद्धार निहित है। हम अपनी अलग पहचान, एक अलग प्रांत, एक अलग सरकार, और एक अलग प्रशासन के बिना संतुष्ट नहीं होंगे...हमें अपनी मदद खुद करनी होगी। हमारा उज्ज्वल भविष्य हमारे ही हाथों में है।"

उनके इस भाषण ने आदिवासी आंदोलन को एक नई दिशा और ऊर्जा प्रदान की और आदिवासी महासभा को क्षेत्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित किया।

जयपाल सिंह मुंडा का प्रवेश और आदिवासी महासभा की सफलता

जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व ने आदिवासी महासभा में नई ऊर्जा भर दी। इसके दो महीने बाद हुए जिला बोर्ड चुनावों में, आदिवासी महासभा ने केवल सिंहभूम और रांची जिलों में उम्मीदवार खड़े किए। इन चुनावों में महासभा ने रांची में 25 में से 16 सीटें और सिंहभूम में 24 में से 22 सीटें जीतीं।

आदिवासी महासभा या 'कोलिशन अबोरिजिनीज़' (Coalition Aborigines) के निर्माण का प्रयोग अब चुनावी लाभ देने लगा था। इन सकारात्मक परिणामों ने न केवल आदिवासी महासभा को मजबूती दी, बल्कि जयपाल सिंह मुंडा की स्थिति भी संगठन में सुदृढ़ कर दी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान राजनीतिक गतिविधियाँ और आदिवासी सहभागिता

द्वितीय विश्व युद्ध के समय, छोटानागपुर क्षेत्र राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र बन गया। 3 सितंबर 1939 को लॉर्ड लिनलिथगो ने ब्रिटिश युद्ध प्रयासों को भारत सरकार का पूर्ण समर्थन देने की घोषणा की। इस एकतरफा निर्णय का विरोध करते हुए, सभी प्रांतीय कांग्रेस सरकारों ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया।

श्रीनाथ राघवन के अनुसार, 'युद्धकालीन भारत की सक्रियता लोकप्रिय समर्थन और भागीदारी सुनिश्चित करने पर निर्भर थी, जो भारतीय राजनीतिक दलों और नेताओं को साथ लाने से ही संभव थी।' चूँकि कांग्रेस ने भारतीय भागीदारी के प्रति कड़ा विरोध जताया, ब्रिटिश सरकार ने अन्य सहयोगियों की तलाश शुरू की। इस प्रक्रिया में, ब्रिटिश सरकार ने पारंपरिक रूप से हाशिए पर रहे सामाजिक समूहों पर काफी हद तक भरोसा करना शुरू कर दिया और उन्हें राजनीतिक आवाज देने लगी। युद्ध में भर्ती होने वाले अधिकांश सैनिक या श्रमिक, मुख्य रूप से **पिछड़े वर्गों और जनजातियों** से थे।

यह स्थिति आदिवासी समुदायों को राजनीतिक मंच पर अधिक प्रमुखता देने का एक कारण बनी और द्वितीय विश्व युद्ध के समय उनके राजनीतिक जागरण को तेज़ किया।

आदिवासी महासभा के राजनीतिक हितों को आगे बढ़ाने में जयपाल सिंह की भूमिका

आदिवासी महासभा के राजनीतिक हितों को आगे बढ़ाने के अवसर को सही तरीके से भांपते हुए, जयपाल सिंह ने ब्रिटिश सरकार की मदद करने का निर्णय लिया। **15 और 16 मार्च 1940 को रांची में आयोजित तीसरे आदिवासी महासभा सम्मेलन** में, उन्होंने अपना अध्यक्षीय भाषण देने से पहले ही 'सिंहासन के प्रति निष्ठा' का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जो यह आग्रह करता था कि एक "आदिवासी रेजिमेंट" बनाई जाए। यह कदम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन के तुरंत बाद उठाया गया था और राजनीतिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था। **जुलाई 1940** में, जयपाल सिंह मुंडा ने अपने समाचार पत्र **'आदिवासी सकम'** का पहला अंक प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने 'युद्ध में सरकार का पूर्ण समर्थन' करने का समर्थन किया। उन्होंने **मुंडा श्रम बटालियन** की भर्ती में मुख्य भूमिका निभाई, जो पूरी तरह से उनके अपने समुदाय, मुंडा जनजाति से बनी थी। हालाँकि कोई सटीक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन हाल के अध्ययनों के अनुसार, उनके प्रयासों के कारण छोटानागपुर क्षेत्र से लगभग **7,000 आदिवासी युवाओं की भर्ती** की गई। इनमें से कई युवक युद्ध के बाद अपने घर लौटे और महासभा के राजनीतिक जागरण अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

छोटानागपुर के आसपास की रियासतों में जयपाल सिंह की भूमिका

यह तथ्य सही है कि जयपाल सिंह मुंडा की भागीदारी छोटानागपुर क्षेत्र के आसपास की रियासतों तक भी फैली हुई थी। **1933 से**, इन रियासतों को पूर्वी राज्य एजेंसी (Eastern States Agency) के रूप में प्रशासित किया गया और उनका भारत सरकार के साथ सीधा संबंध था। भारतीय स्वतंत्रता के निकट आने पर, इन रियासतों ने एक **संयुक्त पूर्वी राज्य संघ** बनाने का प्रयास किया। लेकिन सरदार वल्लभभाई पटेल और वी. पी. मेनन के कुशल राजनीतिक प्रयासों के कारण इन योजनाओं को विफल कर दिया गया और इन रियासतों को **दिसंबर 1947** तक भारतीय संघ में शामिल होने के लिए मजबूर किया गया।

खरसावां और सरायकेला का विलय

1 जनवरी 1948 से खरसावां और सरायकेला रियासतों को उड़ीसा राज्य में मिलाने का आदेश दिया गया। लेकिन जयपाल सिंह ने खरसावां और सरायकेला को बिहार प्रांत का हिस्सा बनाने की वकालत की। इन रियासतों के शासकों और बिहार सरकार के परोक्ष समर्थन के साथ, उन्होंने इस मांग के समर्थन में एक आंदोलन शुरू किया।

1 जनवरी 1948 को (यानी उनके उड़ीसा में विलय की तिथि पर) आदिवासी महासभा के समर्थकों और उड़ीसा पुलिस के बीच संघर्ष हुआ, जिसमें कई लोग मारे गए और सैकड़ों घायल हो गए। आरोप लगाए गए कि निहत्थे भीड़ पर मशीनगनों से गोलीबारी की गई और दर्जनों शवों को ट्रकों से ठिकाने लगाया गया।

जयपाल सिंह ने इस मुद्दे को संविधान सभा में उठाया और खरसावां में हुए इस रक्तपात के लिए उड़ीसा सरकार को जिम्मेदार ठहराया।

खरसावां की घटना और झारखंड आंदोलन की प्रगति

पुलिस द्वारा की गई गोलीबारी से उपजे आक्रोश को शांत करना संभव नहीं हो पाया। जयपाल सिंह ने इस घटना को 'एक और जलियांवाला बाग' करार दिया। इन परिस्थितियों में, सरायकेला और खरसावां को उड़ीसा में विलय करने के पहले के निर्णय को स्थगित कर दिया गया। **मई 1948** में, भारत सरकार ने अपने पूर्व निर्णय को पलटते हुए प्रशासनिक सुविधा के आधार पर फैसला किया कि सरायकेला और खरसावां को बिहार के सिंहभूम जिले में शामिल किया जाएगा।

यह जयपाल सिंह के नेतृत्व वाले अलग राज्य आंदोलन के लिए एक बड़ी जीत थी। लेकिन इस निर्णय से संतुष्ट होने के बजाय, जयपाल सिंह और अधिक मुखर हो गए। इसके बाद, उन्होंने एक बड़े झारखंड राज्य के लक्ष्य को हासिल करने के लिए हर संभव प्रयास किया और राजनीतिक तनाव बढ़ाते हुए **'छोटानागपुर के नौ अन्य राज्यों'—चांगभाखर, जशपुर, कोरिया, सरगुजा, उदयपुर, बामरा, बोनाई, गंगपुर, और क्योंझर—की वापसी** की मांग की।

राष्ट्रीय नेताओं की शंकाएँ और आंदोलन का विस्तार

इस अवधि में, जयपाल सिंह के नेतृत्व वाले झारखंड आंदोलन को शीर्ष राष्ट्रवादी नेताओं ने गंभीर संदेह की दृष्टि से देखा। मध्य प्रांत के प्रधानमंत्री **पंडित रवि शंकर शुक्ला** ने सरदार वल्लभभाई पटेल को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कुछ 'अतिरिक्त-न्यायिक' चिंताओं को सामने रखा। उन्होंने लिखा:

"आदिवासी समस्या पहले से ही गंभीर सिरदर्द बन रही है। सरगुजा और जशपुर को बिहार में विलय करने का आंदोलन वास्तव में जयपाल सिंह के झारखंड निर्माण आंदोलन से जुड़ा हुआ है। जयपाल सिंह चाहते हैं कि उनके सभी आदिवासी एक प्रांतीय सरकार के तहत आएं ताकि उन्हें केवल एक मोर्चे पर लड़ना पड़े... उनके आदिवासी पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रांत के चार राज्यों में फैले हुए हैं। यदि जशपुर और सरगुजा को बिहार में मिला दिया जाता है, तो जयपाल सिंह मजबूत स्थिति में होंगे और उनका आंदोलन बिहार के लिए संभालना कठिन हो सकता है। यह स्पष्ट है कि क्या देश के व्यापक राष्ट्रीय हितों में इस अलगाववादी प्रवृत्ति को एक प्रांत में आदिवासी आबादी को केंद्रित करके प्रोत्साहित किया जाना चाहिए..."
यह पत्र झारखंड आंदोलन के प्रति राष्ट्रवादी नेताओं की चिंताओं और जयपाल सिंह की रणनीति की गहराई को उजागर करता है, जिसने झारखंड आंदोलन को राष्ट्रीय राजनीति के लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना दिया।

सरायकेला और खरसावां का विलय और झारखंड आंदोलन का ठहराव

इन शब्दों ने अपना प्रभाव छोड़ा और जयपाल सिंह की आगे की मांगों को दृढ़ता से खारिज कर दिया गया। झारखंड आंदोलन को **सरायकेला और खरसावां को बिहार में विलय** के रूप में केवल यही रियायत मिली, जिसे "अधिक उदार न होने वाले" सरदार पटेल ने स्वीकार किया। इसके बाद के वर्षों में, आंदोलन पर प्रभावी रूप से रोक लगा दी गई।

इस प्रकार, जयपाल सिंह मुंडा एक ओर संविधान सभा (CA) में आदिवासी प्रतिनिधि के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे, तो दूसरी ओर अपने गृह क्षेत्र छोटानागपुर में राजनीतिक उथल-पुथल के केंद्र में थे। **गैर-असम क्षेत्रों पर उप-समिति** का नेतृत्व **ए. वी. ठक्कर** ने किया, जिसमें **जयपाल सिंह मुंडा**, **देवेंद्र नाथ सामंता**, **फूल भानु शाह**, **जगजीवन राम**, **प्रफुल्ल चंद्र घोष**, और **राज कृष्ण बोस** सदस्य थे। दिलचस्प बात यह है कि इस उप-समिति में सह-अपनित (co-opted) सदस्यों के रूप में **कोडंद रामैया**, **खेत्रमणि पांडा**, **सदाशिव त्रिपाठी**, **स्नेह कुमार चकमा**, और **डंबर सिंह गुरंग** शामिल थे। इस उप-समिति के सचिव **भारतीय सिविल सेवा (ICS)** अधिकारी **आर. के. रामध्यानी** थे। इस उप-समिति में संविधान सभा के दो ही आदिवासी सदस्य थे—जयपाल सिंह मुंडा और देवेंद्र नाथ सामंता। सामंता बिहार से कांग्रेस का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। जयपाल सिंह मुंडा को छोड़कर, शेष
उप-समिति के सदस्य या तो कांग्रेस से थे या इसके राजनीतिक दृष्टिकोण के समर्थक थे।

वॉरली आंदोलन और आदिवासी क्षेत्रों की जांच

यह उल्लेखनीय है कि जिन आदिवासी क्षेत्रों पर वामपंथी आंदोलनों का प्रभाव पड़ा था, उनमें से एक को **बहिष्कृत और आंशिक रूप से बहिष्कृत क्षेत्र उप-समिति** ने भी दौरा किया था। इनमें थाणे जिले के **उंबरगांव और डहाणू तालुका** शामिल थे, जिनका दौरा मार्च 1947 में, वॉरली आंदोलन के समाप्ति के तुरंत बाद किया गया।

उप-समिति ने वहां मौजूद वॉरली आदिवासियों से उनकी मजदूरी और भूमि की उपज के बारे में जानकारी ली। महिलाओं से उनके भोजन और कपड़ों की जरूरतों के बारे में भी पूछा गया, जिनके जवाब में उन्होंने कहा

कि उन्हें कपड़े खरीदने के लिए मुर्गियां बेचनी पड़ती हैं। जाति, पंचायतों और विवादों के निपटारे के बारे में भी पूछताछ की गई।

इस समूह में कांग्रेस समर्थकों के बीच अकेले और मुखर आदिवासी प्रतिनिधि **जयपाल सिंह मुंडा** थे। उन्होंने एक पत्रकार से कहा कि वॉरली गांवों में अपने दौरों, टिप्पणियों और चर्चाओं के बाद उन्हें विश्वास हो गया था कि ये लोग 'देश के सबसे उपेक्षित लोग' हैं।

मुंडा ने वॉरली आदिवासियों से उनकी शिकायतें और मांगे बताने को कहा। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश जल्द ही भारत छोड़ने वाले हैं और भारतीय सरकार उनकी शिकायतों का निवारण करेगी। उन्होंने चेताया कि यदि आदिवासी अब अपनी बात नहीं रखेंगे तो उनके अधिकारों को नजरअंदाज कर दिया जाएगा।

उन्होंने वॉरली लोगों से पूछा कि क्या वे जिला बोर्डों और विधान सभा में सीटें चाहते हैं। इस पर एक आदिवासी प्रतिनिधि ने आगे आकर सुधारात्मक उपायों की मांग की, जैसे भूमि का आवंटन, मकान बनाने के लिए लकड़ी, स्कूल और अस्पताल खोलना, और अधिक कुएँ खोदना क्योंकि उन्हें झरनों का पानी पीना पड़ता था, जिससे बीमारियाँ फैलती थीं। जयपाल सिंह मुंडा का यह प्रयास उनकी गहरी संवेदनशीलता और आदिवासियों के अधिकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि उप-समिति के अकेले मुखर आदिवासी सदस्य ने वॉरली आदिवासियों से पूछा कि क्या वे प्रतिनिधि संस्थानों में आरक्षित सीटें चाहते हैं। वॉरली समुदाय से जो एकमात्र प्रतिक्रिया आई, उसमें लोकतांत्रिक राजनीति में आदिवासी प्रतिनिधित्व के प्रति कोई रुचि नहीं व्यक्त की गई। इसके बजाय, उस व्यक्ति ने रोजमर्रा की अधिक बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की मांग की।

सितंबर 1947 में सलाहकार समिति को प्रस्तुत अपनी अंतिम रिपोर्ट में, ठाक्कर उप-समिति ने झारखंड के मुद्दे पर भी विस्तार से विचार किया।

"रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया कि बिहार में 'भारत के किसी भी अनुसूचित क्षेत्र में सबसे बड़े सघन आदिवासी क्षेत्र' का समावेश है। यहाँ भी, ईसाई आदिवासियों का मुद्दा प्रमुखता से सामने आया। गैर-ईसाई आदिवासियों की तुलना में, वे शैक्षिक और आर्थिक रूप से उन्नत थे और राजनीतिक रूप से अधिक संगठित थे। रिपोर्ट में 'झारखंड आंदोलन' में उनकी भूमिका पर चर्चा की गई, जिसे छोटानागपुर में व्याप्त असंतोष की 'चरम अभिव्यक्ति' के रूप में देखा गया।

हालाँकि, यह भी स्वीकार किया गया कि यह आंदोलन आदिवासियों की **'कल्पना और आकांक्षाओं को प्रेरित'** कर रहा था। यह टिप्पणी झारखंड आंदोलन की बढ़ती अपील और उसके प्रभाव को रेखांकित करती है, विशेषकर आदिवासी समुदाय के बीच।

जयपाल सिंह का ठाक्कर रिपोर्ट पर असहमति का नोट

जयपाल सिंह ने ठाक्कर रिपोर्ट पर एक असहमति का नोट जोड़ा। उन्होंने इस पर असंतोष व्यक्त किया कि पहले से आंशिक रूप से बहिष्कृत घोषित किए गए क्षेत्रों के बड़े हिस्से को **अनुसूचित क्षेत्रों** की सूची से बाहर कर दिया गया था। सिंह का दावा था कि उप-समिति द्वारा जांचे गए सभी गवाहों ने स्पष्ट रूप से कहा था कि **छोटानागपुर प्रभाग को संपूर्ण रूप से अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया जाना चाहिए और किसी भी जिले या क्षेत्र को अनुसूचित स्थिति से बाहर नहीं रखा जाना चाहिए।**

उनके विचार में, **जनजातीय सलाहकार परिषद (टीएसी)** के पास वीटो पावर होना आवश्यक था ताकि मानभूम, हजारीबाग और पलामू जिलों के उन पंद्रह लाख आदिवासियों की रक्षा की जा सके, जिन्हें अनुसूचित स्थिति से बाहर कर दिया गया था।

जयपाल सिंह ने यह भी प्रस्ताव रखा कि भारतीय सरकार को चिटगांव हिल ट्रैक्ट्स (Chittagong Hill Tracts) को वापस लेने का दावा करना चाहिए और यूनाइटेड प्रॉविन्स (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के मिर्जापुर जिले के जनजातीय क्षेत्र को छोटानागपुर पठार के अनुसूचित क्षेत्रों में शामिल करना चाहिए।

ठाक्कर की प्रतिक्रिया

जयपाल सिंह की असहमति के जवाब में, ठाक्कर ने यह कहते हुए उनके विचार को दरकिनार कर दिया कि उप-समिति द्वारा जांचे गए किसी भी गवाह को यह नहीं बताया गया था कि उनकी जिम्मेदारी विभिन्न प्रांतों के कुछ क्षेत्रों को अनुसूचित करने की सिफारिश करना है।

ऐसा करके, ठाक्कर ने अनुसूचित क्षेत्रों के उपकरण को स्वतंत्र भारत में आदिवासी हितों की रक्षा के व्यापक संवैधानिक ढांचे से अलग करने की कोशिश की। यह जयपाल सिंह की मांगों को सीमित करने और अनुसूचित क्षेत्रों के प्रश्न को सीमित संदर्भ में रखने का प्रयास था।

पंचम अनुसूची का अंतिम स्वरूप

उप-समितियों की रिपोर्टों के प्रस्तुत होने के बाद, सरदार पटेल के सुझाव पर **25 अगस्त 1947** को एक संयुक्त बैठक आयोजित की गई। इस बैठक में यह स्वीकार किया गया कि भूमि संरक्षण, पिछड़ापन, अशिक्षा, चिकित्सा सहायता और संचार जैसी समस्याएँ इन विभिन्न क्षेत्रों की सामान्य चिंताएँ हैं।

हालाँकि, जयपाल सिंह मुंडा द्वारा उप-समितियों की रिपोर्टों पर चर्चा करने की बार-बार मांग के बावजूद, इस मुद्दे को लगातार टाला गया। **5 सितंबर 1949** को अंतिम चर्चा शुरू हुई, जब डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने संविधान सभा (सीए) के समक्ष पंचम अनुसूची का मसौदा प्रस्तुत किया। यह सोमवार का दिन था और यह मसौदा सीए के सदस्यों के बीच पिछले शुक्रवार को ही वितरित किया गया था।

अंबेडकर ने मूल मसौदे में तीन महत्वपूर्ण संशोधन पेश किए:

1. **जनजातीय सलाहकार परिषद (टीएसी):** प्रत्येक राज्य में, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र या अनुसूचित जनजातियाँ हैं, वहां टीएसी के प्रावधान को संशोधित किया गया और इसे राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया।
2. **राज्यपाल को विवेकाधिकार:** दूसरा संशोधन टीएसी को कमजोर बनाता था क्योंकि इसमें राज्यपाल को संसद या स्थानीय विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानूनों पर टीएसी की सलाह को खारिज करने का अधिकार दिया गया। अंबेडकर ने कहा कि यह 'बहुत बेहतर' होगा कि 'राज्यपाल के विवेक को पूरी तरह से नियंत्रित न किया जाए।'
3. **संशोधन का अधिकार:** तीसरा, मूल मसौदे में पंचम अनुसूची में संशोधन की अनुमति नहीं थी। इस संबंध में एक संशोधन लाया गया, जिससे संसद को भविष्य में साधारण बहुमत से संशोधन करने की शक्ति दी गई। अंबेडकर ने कहा कि संसद को यह अधिकार होना चाहिए क्योंकि 'यह एक प्रकार का

राज्य के भीतर राज्य बनाना व्यर्थ है... (स्थिति) को हमेशा के लिए स्थिर नहीं किया जाना चाहिए और समय और परिस्थितियों के अनुसार संसद को परिवर्तन करने का अधिकार होना चाहिए।'

जयपाल सिंह मुंडा का विरोध

इन संशोधनों ने जयपाल सिंह को नाराज कर दिया, विशेष रूप से दूसरा संशोधन, जिसने टीएसी को उसकी मूल छवि का एक कमजोर प्रतिबिंब बना दिया। उन्होंने आरोप लगाया कि इस मामले पर उनसे परामर्श भी नहीं किया गया:

"एक आदिवासी होने के नाते, मेरे पास और सबसे पहले मेरे पास यह अधिकार होना चाहिए था कि प्रस्तावित बदलाव में मुझसे परामर्श किया जाए... मैं चाहता हूँ कि जनजातीय सलाहकार परिषद प्रभावी हो और जो कुछ किया जा रहा है उसमें उसकी वास्तविक भूमिका हो... (टीएसी) एक वास्तविकता होनी चाहिए, न कि एक दिखावा।"

के. एम. मुंशी द्वारा पंचम अनुसूची में संशोधन के लिए दिए गए दो कारण

मसौदा समिति के सदस्य के. एम. मुंशी ने पंचम अनुसूची में संशोधन के लिए दो कारण बताए। पहला, पहले का मसौदा पूरे देश के लिए एक **'समान और रूढ़िबद्ध संहिता'** था, जबकि प्रत्येक प्रांत में जनजातीय समस्याओं की विशिष्ट भिन्नताएँ थीं।

दूसरा, पहले का मसौदा केवल प्रांतों से संबंधित था, लेकिन रियासतों के भारतीय संघ में विलय के परिणामस्वरूप राजनीतिक ढांचे में बड़े पैमाने पर बदलाव आया था। इनमें से कई रियासतों में बड़ी जनजातीय आबादी थी, और पूरे देश के लिए एक समान योजना बनाना आवश्यक हो गया था।

जयपाल सिंह मुंडा की मांगों की अनदेखी

अंततः, अंबेडकर के सभी संशोधन स्वीकार कर लिए गए, जबकि जयपाल सिंह मुंडा द्वारा मांगी गई किसी भी विशेषता को संविधान सभा (सीए) में स्वीकृति नहीं मिली। सीए की संरचना मुख्य रूप से कांग्रेसियों की थी, और जयपाल सिंह के विरोधों के बावजूद, **टीएसी (जनजातीय सलाहकार परिषद)** केवल एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में अस्तित्व में आई, जिसके पास वास्तविक पर्यवेक्षी शक्तियाँ नहीं थीं।

"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जयपाल सिंह के सुझावों को स्वीकार तो किया, लेकिन उन पर अपने नियम थोप दिए। भले ही पंचम अनुसूची को संवैधानिक रूप में स्थान दिया गया, **अंतिम क्षणों में किए गए संशोधनों** के कारण उसकी संभावित प्रभावशीलता को बड़े पैमाने पर सीमित कर दिया गया।

संविधान सभा की बहसों में पंचम अनुसूची की सीमित संभावनाएँ

संविधान सभा (सीए) की बहसों की शुरुआत से ही पंचम अनुसूची के तहत सशक्त संवैधानिक व्यवस्थाओं पर सहमति बनाने की संभावनाएँ काफी कम थीं। छोटानागपुर में आदिवासी महासभा के मुख्य विपक्ष के रूप में उभरने के कारण, कांग्रेसियों, विशेषकर बिहार से संबंधित सदस्यों ने, जयपाल सिंह मुंडा के इरादों को कठोरता से आंक लिया और संविधान सभा में उनकी आदिवासी स्वायत्तता की माँगों को अधिक महत्व नहीं दिया।

वास्तव में, **टीएसी (जनजातीय सलाहकार परिषद)** की तुलना में **राज्यपाल के विवेकाधिकार** को अधिक महत्व देने ने उस संरक्षण को संस्थागत रूप से कमजोर कर दिया, जो पंचम अनुसूची के मूल मसौदे ने

आदिवासियों को प्रदान करने का वादा किया था। राज्यपाल, जिसका कोई निश्चित कार्यकाल नहीं था और जो अनिवार्य रूप से केंद्र के नियंत्रण में था, आदिवासियों के हितों में कोई सार्थक विवेकाधिकार लागू नहीं कर सकता था।

हालाँकि सीए ने अनुसूचित क्षेत्रों को स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र-राज्य की नीति के रूप में जनजातीय कल्याण को बढ़ावा देने और कमजोर आदिवासी समुदायों को सुरक्षा प्रदान करने के साधन के रूप में स्वीकार किया, लेकिन इसकी स्वीकृति **अधिकतम रूप से केवल औपचारिक थी**। यह राजनीतिक लाभ के चलते, विशेष रूप से **आदिवासी महासभा की चुनौती को रोकने के लिए**, और पूर्वी भारत की राजनीति, विशेष रूप से बिहार में, लंबे समय तक कांग्रेस के वर्चस्व की संभावनाओं को बनाए रखने के लिए किया गया।

निष्कर्ष:

जयपाल सिंह मुंडा भारतीय इतिहास में एक अद्वितीय आदिवासी नेता के रूप में उभरते हैं, जिन्होंने न केवल आदिवासी समुदायों की आवाज को राष्ट्रीय स्तर पर बुलंद किया, बल्कि उनके अधिकारों के लिए संवैधानिक संरचना में विशेष स्थान सुनिश्चित किया। भारतीय संविधान की पांचवीं अनुसूची उनके नेतृत्व और संघर्ष का प्रत्यक्ष परिणाम है, जो आदिवासियों की भूमि, संस्कृति, और अधिकारों की रक्षा के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती है। संविधान सभा में जयपाल सिंह ने यह स्पष्ट किया कि आदिवासी समुदायों को केवल संरक्षण की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उन्हें उनकी संस्कृति, भूमि और संसाधनों पर अधिकार और स्वायत्तता दी जानी चाहिए। पांचवीं अनुसूची के प्रावधान इस दिशा में एक बड़ा कदम थे, लेकिन उनके प्रभावी क्रियान्वयन की कमी ने इन प्रयासों को पूरी तरह सफल होने से रोक दिया है। आज, जब आदिवासी समाज विस्थापन, गरीबी, और अधिकारों के हनन जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है, जयपाल सिंह मुंडा के विचार पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गए हैं। उनकी दृष्टि केवल एक कानूनी ढांचे तक सीमित नहीं थी, बल्कि एक समावेशी और आत्मनिर्भर आदिवासी समाज की स्थापना का स्वप्न था। पांचवीं अनुसूची के प्रावधानों का सख्ती से पालन, आदिवासी समुदायों के नेतृत्व को प्रोत्साहन, और उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता आज भी जयपाल सिंह मुंडा के सपनों को साकार करने का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। उनका जीवन और संघर्ष न केवल आदिवासी समाज के लिए प्रेरणा है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र और समावेशी विकास के लिए भी एक मार्गदर्शक सिद्धांत है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जयपाल सिंह मुंडा का योगदान केवल इतिहास तक सीमित नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए भी एक महत्वपूर्ण आधार है। उनकी दृष्टि को साकार करना न केवल आदिवासियों के हित में है, बल्कि यह भारत के लोकतांत्रिक मूल्यों को भी मजबूत करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. ‘Excluded areas: Bihar assembly passes resolution’, The Times of India, 4 April 1939,

2. Sangeeta Dasgupta, ‘Reordering a world: the Tana Bhagat movement, 1914–1919’, Studies in History, Vol. 15, no. 1, 1999,
3. L. N. Rana, ‘Introduction of provincial autonomy (1937–1939) and the Jharkhand region’, Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 58, 1997,
4. Nirdosh Kumar, The making of Adivasi Mahasabha: a history of Adivasi politics in colonial
Chhotanagpur (Lucknow: Book Rivers, 2019),
5. Santosh Kiro, “The life and times of Jaipal Singh Munda”, Prabhat Prakashan; First Edition (1 January 2018)
6. हेरॉल्ड एस. तोपनो : "उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष" सम्पादक - अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, 2015
7. Jaipal Singh Munda, In And With Adivasidom (Lo Bir Sendra”, Pyara Kerketta Foundation, Ranchi, 2023
8. Balvir Dutt, “Jaipal Singh : Ek Romanchak Ankahi Kahani”, Prabhat Prakashan; New Delhi-2017
9. रामचंद्र गुहा, "इंडिया आफ्टर गाँधी" मैकमिलन, लंदन, 2007
10. Marang Gomke Jaipal Singh Munda: Life Journey, Contributions and Legacy of the Tribal Leader in Indian Independence, Prabhat Prakashan Pvt. Ltd.; New Delhi, 2019
11. Pratiman -17, 18 Jaipal Singh Munda (1903-1970) Publisher : Vani Prakashan (12 March 2023)
12. अश्विनी कुमार पंकज, “संविधान-सभा में जयपाल: कॉलोनियल रिबेट, फ्यूडल डिबेट और आदिवासी आखेट”, Notion Press (4 July 2024)
13. Santosh Kiro, “Biography of Jaipal Singh Munda: The Inspiring Story of a Tribal Icon”, Prabhat Prakashan (29 August 2020)
14. इग्नेश कुजूर, “झारखण्ड बिट्रेड रामदयाल मुंडा झारखण्ड मूवमेंट”, IWGIA, 2003
15. Dr. Rajendra Prasad, “Correspondence and Select Documents”, Presidency Period, Allied Publishers Pvt Ltd (1 April 1997)